जून १९९५ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धर्म का शुद्ध स्वरूप

(विगत ६-७ मई, १९९५ को धम्मगिरि पर उक्त विषय पर एक विशेष सम्मेलन हुआ, जिसमें देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये। सब ने स्वीकार किया कि ठीक से समझकर धर्म को धारण करने से ही कल्याण संभव है, बुद्धिविलासों से नहीं। सम्मेलन आरंभ होने से पूर्व पू. गुरुजी ने जो उद्घाटन प्रवचन दिया वह सभी पाठकों के लाभार्थ यहां प्रकाशित कर रहे हैं। इस सम्मेलन के कुछ अन्य लेखों के साथ पूज्य गुरुदेव का महत्वपूर्ण समापन प्रवचन भी आगामी अंकों में प्रकाशित किया जायेगा। – सं.)

आदरणीय भिक्षु संघ, धर्मप्रेमी सज्जनो, सन्नारियो!

यहां दो दिन के लिए एकत्र हुए हैं ताकि समझें कि धर्म क्या है। जो आदमी यही नहीं समझता कि 'धर्म क्या है' वह उसे धारण कैसे करे? और जो आदमी धारण नहीं करेगा उसको धर्म के फल कैसे मिलेंगे? उसको धर्म का लाभ कैसे होगा?

हमारे देश में पिछले दो हजार वर्षों में बड़े दुर्भाग्य की बात हुई कि हम धर्म शब्द का अर्थ खो बैठे। जब से इस देश में आया हूं और जहां कोई धर्म की बात कहता हूं तो जैसे ही 'धर्म' शब्द का प्रयोग किया कि सुनने वाले के कान खड़े हुए 'कि यह आदमी कौनसे धर्म की बात करेगा –हिंदू धर्म की, बौद्ध धर्म की, ईसाई धर्म की, मुस्लिम धर्म की या सिक्ख धर्म की? जैसे ये पुछल्ले लगाये बिना धर्म धर्म ही नहीं। यह कुछ लगना ही चाहिए उसके साथ चाहे हिंदू हो या बौद्ध आदि तब तो धर्म है। अरे भाई, कहां उलझ गये। धर्म का अपना एक अस्तित्व है। उसे इन वैशाखियों की जरूरत नहीं। ये खपच्चियां लगीं कि धर्म कमजोर हो गया।

धर्म को 'हिंदू धर्म' कहते ही 'हिंदू' प्रमुख हो जायेगा, धर्म गौण हो जायेगा। 'बौद्ध धर्म' कहते ही 'बौद्ध' प्रमुख हो गया, धर्म गौण हो गया। ऐसे ही जैन, ईसाई, मुस्लिम, सिख, यहूदी प्रमुख हो जायेगा, धर्म क्या हुआ?

इस देश में आये हुए इतने वर्ष हो गये। शिविरों में भी और शिविर के बाहर भी बहुत लोग ऐसे मिले जो छाती ठोक कर कहते हैं कि मैं बड़ा कट्टर हिंदू हूं, मैं बड़ा कट्टर मुसलमान हूं, कट्टर बौद्ध, कट्टर ईसाई, कट्टर जैन हूं। करोड़ों की आबादी वाले इतने बड़े देश में आज तक एक आदमी यह कहने वाला नहीं आया कि मैं कट्टर धार्मिक हूं। कट्टर धार्मिक होना बहुत कठिन है। कट्टर हिंदू होना कितना आसान है – यह कर्मकांड कर लिया, वह व्रत-उपवास कर लिया, वह पर्व या तीज-त्यौहार मना लिया या दार्शनिक मान्यता मान ली – मैं कट्टर हिंदू हूं। ऐसे कोई कहेगा मैं कट्टर बौद्ध, कट्टर मुसलमान, पर धर्म कहां गया?

जब यही भूल गये कि धर्म क्या है तो धारण कैसे करेंगे? हजारों वर्ष पूर्व भारत की भाषा में धर्म का अर्थ होता था –स्वभाव, प्रकृति, निसर्ग के नियम, कुदरत का कानून, विश्व का विधान। आज की भाषाओं में भी कहीं-कहीं इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग होता है तो लगता है दूर की कोई गूंज सुनाई दे रही हो। जैसे कहते हैं कि अग्नि का धर्म है जलना और जलाना। तो उस समय यह नहीं पूछते न कि यह हिंदू अग्नि का धर्म है कि बौद्ध अग्नि का या जैन अग्नि का या मुस्लिम अग्नि का? पर जब मैं बोलने लगता हूं तो पूछते हैं, "कौनसे धर्म की बात कर रहे हैं? आप तो बौद्ध धर्म की बात कर रहे हैं। 'विपश्यना' तो बौद्ध धर्म की है।" अरे नहीं भाई, समझो तो सही कि धर्म किसको कहते हैं। जैसे अग्नि अग्नि है, न हिंदू है, न मुस्लिम। ऐसे ही बर्फ का धर्म है शीतल होना, शीतल करना। यह उसकी प्रकृति है, नहीं तो बर्फ बर्फ नहीं। ऐसे ही जो जलती नहीं, जलाती नहीं वह अग्नि नहीं। तो यह धर्म है।

ऐसे ही कहते हैं सभी प्राणी जराधर्मा हैं, व्याधिधर्मा हैं, मरणधर्मा हैं। तो क्या केवल बौद्ध ही या केवल हिंदू ही या केवल मुसलमान ही ऐसे हैं। अरे, सारे प्राणी हैं भाई, यह स्वभाव है। ठीक इसी प्रकार हमारे देश के संतो ने, बुद्धों ने अंतर्मुखी हो कर धर्म का निरीक्षण करना शुरू किया तो देखा कि हमारे चित्त में हमने जो धारण किया उसका क्या धर्म है, क्या स्वभाव है? चित्त में हमने कैसी वृत्ति धारण की, उस वृत्ति का क्या स्वभाव है? हमने क्रोध धारण किया, कि द्वेष धारण किया, कि दुर्भावना धारण की, कि अहंकार धारण किया, कि वासना धारण की –जो विकार धारण किया उसका स्वभाव क्या है? उसका एक ही स्वभाव है कि वह हमें व्याकुल बनायेगा और आसपास के सारे वातावरण को व्याकुल बना देगा। जैसे अग्नि का स्वभाव है कि वह जिस पात्र में जलेगी उस पात्र को जलायेगी और आसपास के सारे वातावरण को गरमा देगी। उसके संपर्क में जो आयेगा, वह जलने लगेगा।

इसी प्रकार हम अंदर विकार जगायेंगे तो वह पहले हमें जलायेगा, बहुत व्याकुल बनायेगा और फिर सारे वातावरण में फैलना शुरू हो जायेगा। उस समय जो हमारे संपर्क में आयेगा वह भी जलने लगेगा, व्याकुल हो जायेगा। स्वभाव है। जब मैं अपने भीतर क्रोध जगाता हूं, द्वेष जगाता हूं, दुर्भावना जगाता हूं तो उसे क्या लेबल लगायेंगे कि अब हिंदू क्रोध आया, अब मुस्लिम क्रोध आया, नहीं, अब तो बौद्ध क्रोध आया। लगाते हो लेबल? और उससे जो जलन हुयी, व्याकुलता हुयी वह हिंदू व्याकुलता है, हिंदू जलन है, बौद्ध जलन है...? अरे, कुदरत का कानून है। विकार जगाओगे तो जलोगे। अब अपने को हिंदू कहते रहो, बौद्ध कहते रहो, ईसाई कहते रहो, ब्राह्मण कहते रहो, शूद्र कहते रहो, कुछ फर्क पड़ने वाला नहीं। क्रोध जगाया है न, वह इस बात को नहीं देखेगा कि यह व्यक्ति अपने को किस नाम से पुकारता है। इसके माथे पर कौनसा लेबल लगा है, कौन-कौनसे कर्मकांड पूरा करता है अथवा कौन-कौनसी दार्शनिक मान्यता मानने वाला है। कुछ नहीं पूछेगा। जगाया क्रोध कि जलना ही होगा। दुनिया की कोई शक्ति हमें नहीं बचा सकती। चाहे इस देवी को माने कि उस देवता या ईश्वर को माने या बिल्कुल किसी को न माने, जलना ही होगा क्योंकि क्रोध जगाया है न।

और ठीक इसी प्रकार क्रोध न जगा कर चित्त को निर्मल कर लिया, मैत्री, करुणा और उपेक्षाभाव से भर लिया तो इतनी शांति मिलेगी कि क्या कहने। अब उस मैत्री, करुणा, उपेक्षा को बौद्ध कहेंगे, कि जैन कहेंगे? निर्मलता गुण है और निर्मल होने से चित्त में ये सद्गुण आते ही हैं और उसके परिणामस्वरूप शांति आती है तो उस शांति को 'हिंदू' कहेंगे कि मुस्लिम? इसको ही धर्म कहा और यह धर्म जब तक अनुभूति पर नहीं उतरता तब तक भाई केवल बुद्धिविलास ही हुआ। मैं भी बहुत उलझा इस बुद्धिविलास में। जीवन के कितने वर्ष गँवाये मैंने। याद करता हूं ऐसी सभाओं में एकत्र हो करके, हमारी गीता यह कहती है, हमारी उपनिषद यह कहती है, ऐसा है, ऐसा है। कोई कहता है हमारा धम्मपद ऐसा है, हमारा कुरान ऐसा है। होगा भाई, मैं कैसा हूं यह तो नहीं देखा न! हम तो लड़े जा रहे हैं। हमारा अच्छा, तुम्हारा बुरा। कितना समय गँवाया, कुछ पल्ले नहीं पड़ा। और जैसे ही अंतुर्मुखी हो कर भीतर देखना शुरू कर दिया, दुनिया ही बदल गयी। कहां से कहां पहुँच गया। अपने भीतर देखे बिना बात समझ में नहीं आती। इस बुद्धि की अपनी सीमा होती है और यह बात उस सीमा से बहुत आगे है। क्या समझ पाओगे। जब तक अनुभूति पर नहीं उतरे, कुछ नहीं होगा। कानून तो वही है, जो बाहर है, वह भीतर है लेकिन जब तक अपने भीतर जाकर सच्चाई को नहीं देख लेंगे, कानून नहीं समझ में आयेगा।

जन नानक बिन आपा चीन्हे, कटे न भ्रम की काई रे।

जान गया नानक, केवल बातें नहीं करता। इस प्रकार के बुद्धिविलास में उसको कोई रस नहीं है। अंतर्मुखी हो कर जान गया कि सच्चाई क्या है, कुदरत का कानून क्या है। तो कहता है, 'जन नानक बिन आपा चीन्हे...' अपने बारे में जो सच्चाई है, उसे अनुभूति से नहीं जानोगे तो 'कटे न भ्रम की काई रे!' सारा जीवन भ्रम में चला जायेगा। खूब समझते रहोगे। अन्यथा 'मैं बड़ा धार्मिक हूं, देखो, अमुक मंदिर में पूजा कर आया, अमुक मस्जिद में नमाज अदा कर आया, अमुक गिरजाघर में प्रार्थना कर आया, अमुक गुरुद्वारे में पाठ कर आया, अमुक बौद्ध चैत्य में जा कर नमस्कार कर आया – अरे, मेरा क्या कहना। मैं जन्म मनाने वाला, मैं पर्व मनाने वाला, मैं ऐसा, मैं ऐसा...।' बावला आदमी, तू कैसा रे! धर्म को समझा ही नहीं, धर्म क्या है उसका अनुभव करके धारण किया ही नहीं, उसकी जरूरत नहीं समझी। "कि व सचियारा होइए" – वह सच्चाई कब मालूम होगी, जब सचियारा होगा। सचियारा कब होगा? अनुभूति पर सत्य उतरेगा, तब होगा।

कि व सचिआरा होइए, कि व कूड़ै तुटै पालि।

भारत के इस संत ने भारत की भाषा को एक नया शब्द दिया 'सचियारा'। दुखियारा शब्द चलता था भारत में – जिसके पास सुख नहीं वह दुखियारा। जिसके पास दुख नहीं वह सुखियारा। इसने नया शब्द दिया 'सचियारा'। जिसके पास झूठ नहीं। वह वाणी के झूठ की बात नहीं करता। क्या झूठ?

जिसे हम बिना अनुभव किये माने जा रहे हैं वह सब झूठ ही झूठ। तूने तो अनुभव नहीं किया न! कहीं पढ़ा है या बहुत हुआ तो उस पर बुद्धि लगायी है। तेरे लिए तो वह सब झूठ ही है। सच नहीं है। अनुभूति पर उतरे तब सच है। तो 'कि व कूड़ै तुटै पालि' – झूठ की सारी परतें उतार दो। ये सब सुनी-सुनाई बातें, पढ़ी-पढ़ाई बातें, हमारी परंपरा की बातें, हमारे शास्त्रों की बातें, हमारे गुरु महाराज की बातें, हमारे दर्शनशास्त्र की बातें – इन सब को एक ओर रखो। इस क्षण मेरे भीतर यह अनुभव हुआ, मेरे लिए यही सत्य है। अगला क्षण जब यह क्षण बना तो उस क्षण क्या अनुभव हुआ। उस क्षण का मेरे लिए यह सत्य। यों क्षण-प्रतिक्षण, क्षण-प्रतिक्षण सच ही सच के सहारे चलेंगे तो –

आदि सचु, जुगादि सचु, है भी सचु, नानक होसी भी सचु।

सच के सहारे चलते-चलते परम सत्य तक पहुँच जायेगा। जहां किसी कल्पना का सहारा लिया, मान्यता का सहारा लिया, सुनी-सुनाई बातों का सहारा लिया, पढ़ी-पढ़ाई बातों का सहारा लिया, वहां उसके सहारे चलते-चलते किसी बड़ी कल्पना में उलझ कर रह जायेगा। सच्चाई तो कहीं गयी।

हुकमि रजाई चलणा, नानक लिखिआ नालि।

'हुकमि रजाई चलणा' एक और नया शब्द दिया उसने? अब उसे कोई कुदरत कहे, चाहे प्रकृति कहे, कहना चाहे तो उसे परमात्मा कहे, अल्ला-ताला कह ले, चाहे सो नाम दे पर क्या हुकुम है उसका, क्या रजा है उसकी? प्रकृति क्या चाहती है? उसके अनुसार चलना है। तो क्या हुकुम है? अरे, अंदर जाकर देखे बिना तुझे सच्चाई का पता कैसे चलेगा? अंदर जा कर देखना शुरू कर देगा तब समझ में आयेगा कि यह प्रकृति कहती है कि तू जैसे ही विकार जगायेगा, मैं तुझे दंड दूंगी, तुरंत दंड दूंगी, व्याकुल बना दूंगी। और जैसे ही विकार को अलग करेगा, मैं तुझे पुरस्कार दूंगी। बड़ा सुखी बना दूंगी, बड़ा शांत बना दूंगी। अरे, ये नियम हैं, यह रजा है, यह हुकुम है। सचियारा हुये बिना इस 'हुकमि रजाई' का पता कैसे चलेगा?

'नानक लिखिआ नालि' – यह पोथियों में नहीं मिलेगा भाई। ऐसे प्रवचनों में नहीं मिलेगा। चिंतन-मनन करके भी नहीं मिलेगा। यह तो अपने भीतर लिखा हुआ है। उसकी अनुभूति जब होने लगेगी – 'यह शरीर है', 'यह चित्त है'। इस नाम और रूप का कैसा संबंध है और क्या होने से क्या हो जाता है, क्या नहीं होने से क्या नहीं होता है। यह सब कुछ अनुभूति से समझे तब धर्म समझ में आया। धर्म समझ में आया तो उसे धारण करने लगे। समझ में नहीं आया तो क्या धारण करेंगे। कैसे धर्मवान बनेंगे। तो धोखा ही धोखा होगा।

धर्म के नाम पर हमने जो संप्रदाय खड़े कर लिये, इससे इस देश का बड़ा दुर्भाग्य हुआ। धर्म और संप्रदाय आज के भारत में पर्यायवाची शब्द हो गये। दोनों का एक ही अर्थ हो गया। हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म...। अरे, जिनका धर्म से कोई लेन-देन नहीं; दूर-परे का भी संबंध नहीं, वे कैसे धर्म हो गये? 'हिंदू' धर्म कैसे हो गया? 'बौद्ध' धर्म कैसे हो गया?... 'धर्म' धर्म है भाई। लोगों की नजरों में आज 'संप्रदाय' शब्द बड़ा खराब शब्द हो गया। शब्द अपने आप में बुरा नहीं है। जो समता प्रदान करे वह संप्रदाय। पर कहां समता प्रदान करे? आज तो वह विषमता प्रदान करने लगा इसीलिए बड़ा गर्हित शब्द हो गया। बड़ा हल्का शब्द हो गया।

आज तो समाज कहें इन्हें। यह हिंदुओं का समाज है, संगठन है। यह मुसलमानों का, यह सिखों का...। इन्हें धर्म मत कहो भाई! धर्म कहने से धर्म चला जायेगा। धर्म को भूल जाओगे। धर्म तो सब का होता है। जो सार्वजनीन है, सर्वव्यापी है, जो घट-घट में समाया हुआ है। अणु-अणु पर जिसकी हुकूमत चलती है। जो अणु-अणु को धारण करता है, अणु-अणु जिसे धारण करता है वह प्रकृति का नियम (ला ऑफ नेचर), सारे विश्व का विधान; उसे हम छोटा बना दें – यह हिंदुओं का, बौद्धों का, जैनियों का, ईसाइयों का... तो अपमान हुआ न धर्म का। जो अपरिमित है उसे परिमित बनाया, सीमित बनाया न। अरे, धर्म का क्या अपमान होगा, हम अपना अपमान कर रहे हैं। अपनी हानि किये जा रहे हैं। इससे बचें। जिस दिन देश इस दुर्भाग्य के बाहर निकल जायेगा, धर्म को अलग करके उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखना आ जायेगा। कल्याण हो जायेगा।

हिंदुओं का संगठन होना कोई बुरी बात नहीं, बौद्धों, जैनियों आदि का संगठन होना कोई बुरी बात नहीं। अपनी-अपनी सांस्कृतिक सुरक्षा के लिए, अपने-अपने पर्व-त्योहार मनाने के लिए, अपने-अपने कर्मकांड करने लिए; बशर्ते कि दूसरे समाज के लोगों के मन को चोट न पहुँचे। सब अपनी-अपनी मान्यता मानें, पर धर्म से इनका कोई लेन-देन नहीं। धर्म को बिल्कुल अलग रखें।

धर्म का अपना एक अस्तित्व है। बड़ा महान और स्वतंत्र अस्तित्व है। वह अस्तित्व जिस दिन भारत में आ जायेगा और भारत के साथ-साथ सारे विश्व में फैल जायेगा, बड़ा कल्याण होगा। कभी ऐसा ही हुआ था। धर्म की यह बात सारे देश में फैली कि धर्म कैसे धारण करें। उसका मंगल सारे देश में फैला और सारे विश्व में फैलता चला गया। कितना बड़ा कल्याण हुआ, कितना बड़ा मंगल हुआ। धीरे-धीरे उसे भूलते चले गये। धर्म को संप्रदाय, कर्मकांड, दार्शनिक मान्यता बना दी तो उससे जो लाभ मिलना चाहिए था वह कहीं चला गया। अब लाभ मिलता नहीं तो झगड़ेंगे ही और वह भी धर्म के नाम पर। बड़ा दुख होता है और आश्चर्य भी कि इस देश को क्या हो गया। जब एक समाज के लोग कहते हैं कि हमको अपना धर्म बचाना है और उसे तब बचा पाऊंगा जब उस धर्म को नष्ट कर दूंगा। नहीं तो वह धर्म छा जायेगा मुझ पर, नहीं तो मेरे धर्म को नष्ट कर देगा। तो मुझे उस धर्म को इसलिए नष्ट करना है कि मुझे अपना धर्म बचाना है तो मंदिर तोड़ेगा, मस्जिद तोड़ेगा, गिरजाघर फूंकेगा, गुरुद्वारा जलायेगा।

अरे, क्या हो गया? कभी देखा तेरे भीतर? तेरा धर्म तो उसी वक्त खतरे में आ गया जैसे ही तुमने क्रोध जगाया, द्वेष जगाया, दुर्भावना जगायी दूसरे के प्रति। अरे, उसे बचा न! अपने धर्म को बचा न! जब धर्म ही भूल गये तो क्या बचायेंगे। हम धर्म की रक्षा करेंगे तो धर्म हमारी रक्षा करना शुरू कर देगा। धर्म की हत्या करेंगे तो धर्म हमारा हनन करना शुरू कर देगा। यह पाठ तो रोज करते हैं लेकिन जानते नहीं, समझते ही नहीं न! समझते हैं कि हिंदू धर्म की रक्षा करेंगे तो हिंदू धर्म हमारी रक्षा करेगा। बौद्ध धर्म की रक्षा करेंगे...। क्या हो गया हमें, कहां उलझ गये? सारे देश को क्या हो गया? सोचना ही बंद कर दिया। जहां धर्म की बात आई कि सोचना ही बंद कर दिया, यह कह कर कि 'मजहब में अकल को दखल नहीं'। अकल की बात मत करो। विश्वास है न हमारा। अरे, अंधविश्वास को धर्म माने जा रहे हो। करोड़ों की आबादी वाले इस देश ने सोचना ही बंद कर दिया। धर्म की बात आयी तो सोचेंगे नहीं, उसको ऐसे ही मानेंगे।

कैसे धर्म रक्षा करता है? तुमने अपने आप को विकारों से अलग रखा तो धर्म तुम्हारी रक्षा करने लगा। कितना सुख, कितनी शांति दे रहा है। और तुमने विकार जगाने शुरू किए तो हत्या की धर्म की। धर्म तुम्हारी हत्या करने लगा, व्याकुल, व्यथित कर दिया। सच्चाई तो यह थी पर धर्म के नाम पर बहुत अँधेरा फैला, बहुत दुख उठाया। जागो, अभी समय है। जब बहुत अँधेरा होता है तो प्रकाश की जरूरत होती है। बहुत दुख आता है तभी सुख की खोज होती है। अब समय आया है। धर्म के नाम पर बहुत झगड़ चुके। अब सारे देश का होश जागे कि धर्म तो भीतर है। विकारों से मुक्त होने का नाम ही धर्म है और विकारों से विकृत होने का नाम ही अधर्म है। इतनी सी बात जिस आदमी की समझ में जितनी जल्दी आ जाय, उतनी जल्दी धर्म के रास्ते चलने का प्रयत्न करने ही लगेगा।

समझें, विपश्यना क्या है? 'विपश्यना' माने विशेषरूप से अपने भीतर देखना। सब लोग वही देखेंगे जो सच्चाई है। एक को कुछ दिखेगा, दूसरे को कुछ और दिखेगा तो सच्चाई नहीं है। मेरी कल्पना कुछ है और वह दिखाई दे रही है, उसकी कल्पना कुछ और है और वह दिखाई दे रही है तो अपनी-अपनी कल्पना को देख रहा है। सच्चाई नहीं है। हमारे यहां संतो ने बताया कि अपने भीतर अपने आप को जानो। 'आपे जाणे आपे आप' – खुद अपने आप को जानने लगा तो 'रोग न व्यापे तीनों ताप' – सारे भवरोग अपने आप निकल जायेंगे। 'आपे जाणे आपे आप' – यह बात किसी संप्रदायवादी के हाथ चली गयी तो कहेगा 'आत्मा से आत्मा को जानो'। अपने आप को जानने की बात कहीं गयी। अब बेचारा करे कल्पना कि एक जानने वाली आत्मा ऐसी है और एक आत्मा जिसे जाना जा रहा है, ऐसी है। इन आत्माओं को छोड़ें, सचियारा बनें और झूठ की सारी परतें खोलें।

अब क्या हो रहा है? सांस आ रहा है, कल्पना नहीं है न। सांस जा रहा है, कल्पना नहीं है। बस यहीं से शुरू करना है। यों सच्चाई देखते-देखते और क्या हो रहा है; यह सारा प्रपंच देखना है – मानस और शरीर का परस्पर क्या संबंध है, ये कैसे एक-दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं और कैसे प्रभावित हो-हो कर विकार जगा रहे हैं, कैसे विकारों का संवर्धन हो रहा है और कैसे विकार हमारे सिर पर चढ़ रहे हैं, कैसे हमारी वाणी दूषित हो रही है, कैसे हमारे शरीर के कर्म दूषित हो रहे हैं। किसी दार्शनिक मान्यता को सिद्ध करने से क्या मिलेगा? निकम्मी बात होगी न। परंतु अपने इस स्वभाव को देखते-देखते उसे बदल लेंगे। कैसे? विकार जागा है और हम देख रहे हैं तो वह दुर्बल हो गया। परंतु विकार जागा है और हमने नहीं देखा तो वह हमारे सिर पर चढ़कर बोलेगा। इतनी सीधी सी बात कि हमको विकारों से छुटकारा पाना है। जब तक विकार

भीतर हैं, तब तक हम अपने को हिंदू कहें, बौद्ध कहें, ईसाई कहें ... तो भले और सब कुछ हैं पर धार्मिक नहीं हैं। धर्म का हमसे दूर-परे का भी संबंध नहीं। धर्म का हमें कुछ लाभ नहीं मिलने वाला।

धारण करेंगे तो धर्म का हमें खूब लाभ मिलेगा। यह धर्म का देश है। इस देश में इतने संत हुए, अरहंत हुए, सत्पुरुष हुए, बुद्ध हुए हैं। इस देश के लोगों को शुद्ध धर्म मुबारक हो और अपने भीतर जागा हुआ धर्म मुबारक हो ताकि इस देश में सुख-शांति आए। फैलते-फैलते पड़ोसी देशों में ही नहीं, सारे विश्व में फैल जाये। बड़ा मंगल होगा। धर्म जागे तो मंगल ही मंगल होगा, कल्याण ही कल्याण होगा।

जो-जो आज की धर्मसभा में आए हैं, उनमें से जिन्होंने पहले दस दिन की साधना की है उनसे कहना चाहूंगा कि और गहराई में जायें। अभी तो किंडरगार्डन के क्लास में आये हो, बहुत गहरा समुद्र है। जितनी गहराई में जाते जाओगे उतने अनमोल रत्न मिलते चले जायेंगे। और जिन्होंने अभी तक किंडरगार्डन की क्लास भी नहीं ली है उनसे कहूंगा और अपने अनुभव से कहूंगा कि भाई मनुष्य का जीवन बड़ा अनमोल जीवन है। इस माने में अनमोल कि मनुष्य जीवन में अंतर्मुखी होकर देख सकते हैं। यह काम कोई पशु-पक्षी, सरीसृप, कीट-पतंग, प्रेत-प्राणी नहीं कर कर सकता। मनुष्य को कुदरत ने, या कहें परमात्मा ने इतनी बड़ी शक्ति दी है कि वह कुदरत के कानून को देख ले, अनुभव कर ले। धर्म को देख ले, अनुभव कर ले और उसके अनुसार अपना जीवन ढाल ले। मनुष्य का जीवन मिला और यह कल्याणकारी खोयी हुई विद्या फिर भारत आयी है। लोगों का खूब कल्याण करे, खूब मंगल करे। सब का मंगल हो! सब का भला हो! सब की स्वस्ति-मुक्ति हो!

(मंगल मित्र, स. ना. गो.)